महंगाई की मार कौन जिम्मेदार?

जवाबदेही

प्रभात कुमार रॉय

आवश्यक वस्तुओं, विशेषकर खाद्य सामग्री के दामों में अविरल रुप से होती जा रही बढ़ोतरी ने आम मेहनतकश इंसान की जिंदगी को बेहद दुश्वार बना दिया है। मनमोहन सिंह की सरकार तो अपनी जिम्मेदारी को राज्य सरकारों पर ढाल कर एकदम ही निश्चिंत सी हो गई है। ग्लोबलाईजेशन के दौर में सबसे अधिक मुसीबत है उन गरीब मेहनतकशों की, जो अपनी मजदूरी खुद तय नहीं कर सकते। उनकी मजदूरी का कोई समुचित तालमेल निरंतर गति से बढ़ती जाती मंहगाई के साथ कदाचित हो नहीं पाता है। मंहगाई का वास्तविक संबंध किसी तरह से उत्पादन की घनघोर कमी से कदाचित नहीं है, वरन् उन तमाम बिचौलिए जमाखोरों और मुनाफाखोरों से है, जो कि कम दामों में उत्पादित खाद्य सामग्री को किसानों से खरीदते हैं और फिर अनाप शनाप दामों में बाजार में बेचते हैं। ऐसे तमाम जमाखोरों और मुनाफाखोरों पर सरकार अपना शिकंजा कसने में पूर्णतः नाकाम रही है। मंहगाई पर मचे चौतरफा हाहाकार पर केबिनेट बैठक करती है और प्रधानमंत्री बेबसी के साथ कहते हैं कि बहुत जल्द मंहगाई पर काबू कर लिया जाएगा!

भस्मासुर मंहगाई के प्रश्न पर दरअसल केंद्रीय सरकार का रवैया बेहद लापरवाही वाला रहा है। खाद्य मंत्री शरद पवार जिस तरह के गैरजिम्मेदाराना बयान देते हैं, वह आग में घी डालने का काम कर रहे हैं। देश आजकल एक ऐसी अर्थव्यवस्था के दौर में है जबकि अमीर और अमीर होता जा रहा है और गरीब पहले से भी गरीब होता जा रहा है। देश में आज एक अत्यंत ताकतवर कारपोरेट सैक्टर है जिसमें पचास से अधिक खरबपति हैं। लगभग पांच करोड़ लोगों का एक ताकतवर उच्च तबका मौजूद है। दूसरी ओर केंद्र सरकार की एक उच्च कमेटी खुद ही बयान करती है कि देश के सत्तर प्रतिशत लोग मात्र बीस रुपए रोज पर गुजर बसर करने के लिए मजबूर हैं। इन हालात में यह तो बखूबी समझा जा सकता है कि निरंतर बढ़ती जाती मंहगाई के कारण उन सभी लोगों की क्या दशा हो रही है, जो बेहद गरीब हैं!

ग्लोबलाईजेशन के दौर में भारत सरकार की नीतियां अमीरों का कुछ अधिक ही फायदा पंहुचाने की रही है। बहुत से दलों की सरकारें बनीं किंतु इस नीति में कोई मूलभूत अंतर नहीं हुआ। सत्तर फीसदी किसानों के देश में सबसे अधिक उपेक्षित किसान ही रहा है! तभी तो विगत दो दशकों में तकरीबन दो लाख किसान खुदकुशी अंजाम दे चुके हैं। राष्ट्रीय योजना आयोग के ऐजेंडे पर कृषि और किसान सबसे नीचे की श्रेणी पर रहे हैं। देश की निरंतर गति से बढ़ रही आबादी का पेट भरने की खातिर कृषि का समुचित विकास बेहद जरुरी है। किसानों की घनघोर उपेक्षा ने ही वस्तुतः देश में नक्सलवाद को जन्म दिया।

यूएनओ की एक रिपोर्ट बयान करती है कि जिस तरह से मौसम का मिजाज बदल रहा है उससे भारत में भविष्य में इक्यावन फीसदी कृषि योग्य भूमि प्रभावित हो सकती है और देश के करीब चालीस करोड़ किसानों पर इसका प्रभाव हो सकता है। महंगाई से जंग करने के लिए देश को दोहरी कार्यनीति की दरकार है। एक तरफ तो मुनाफाखोरों और जमाखोरों पर सरकारी डंडा बहुत सख्ती से चलना चाहिए। दूसरी ओर कृषि और किसानों की दशा को सुधारने का नियोजित प्रयास होना चाहिए। देश के कुल उत्पादन में कृषि का हिस्सा बीस फीसदी से भी कम रह गया है। अमेरिका द्वारा संचालित विश्व व्यापार संगठन भारत के किसानों को प्रदान की जाने वाली शासकीय सब्सिडी को खत्म करा देना चाहता है। भारत सरकार को इस दबाव के आगे झुकने से स्पष्ट इंकार करना ही होगा।

राज्य व्यवस्था और निरंकुश कारपोरेट बाजार के अनैतिक गठजोड़ ने कुछ ऐसे हालत बना दिए हैं कि किसान और मजदूर हाशिए पर खिसक गए हैं। राजनीति का कारपोरटीकरण और कारपोरेट का राजनीतिकरण भारत की जम्हूरियत और राजकाज का विशिष्ट आचरण बन गया है। राजनीति और कारपोरेट बाजार के अनैतिक गठजोड़ का बढ़ती मंहगाई से कुछ खास ही रिश्ता है। बिना किसी शासकीय व्यवधान के बाजार की जबरदस्त ताकतें दामों में इज़ाफा करके भयंकर मुनाफाखोरी कर रही हैं। हमारे वतन के शासकों में बाजार की मुनाफाखोर ताकतों पर लगाम कसने की न तो कोई इच्छाशक्ति है ना राजनीतिक प्रतिबद्वता। अमेरिका का प्रेजिडेंट ओबामा मंहगाई बढ़ाने वालों की तुलना भाड़े के हत्यारों और लुटेरे से करते हैं। बाजारवादी अमेरिकी शासक इस हकीकत को समझ रहा है किंतु फिर समाजवादी संविधान वाले देश के शासकों की अक्ल इस प्रश्न पर क्यों काम नहीं कर रही है?

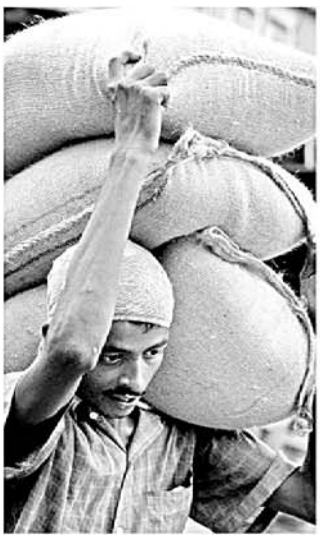

Reproduced by www.hobbyshobby.com with author's permission